धर्म प्रचार
(आध्यात्मिक पक्ष)
भाग – ४

पिछले लेख में बताया गया था कि दुनिया के दो अलग – अलग "मंडल" हैं। इनमें प्रचलित धर्म भी भिन्न – भिन्न हैं तथा इनके प्रचार के साधन भी भिन्न – भिन्न हैं–

1. त्रिगुणी 'मायिकी मंडल'।
2. आन्तरिक 'आत्मिक – मंडल'

त्रिगुणी "मायिकी" मंडल के अनेक देशों वाले धर्मों तथा उनके प्रचार के विषय में, विस्तार से विचार किया जा चुका है।

अब इस लेख में, **'त्रिगुण' से भिन्न 'चौथे पद' के आन्तरिक गुप्त, अनुभवी "आत्मिक मंडल"** पर विचार प्रस्तुत हैं।

इस सूक्ष्म गहरे आत्मिक विषय के 'प्रचार' के सम्बन्ध में विचार करने से पहले **आन्तरिक 'आत्मिक' मंडल** की –

आन्तरिक सूझ
अनुभवी ज्ञान
पूर्ण निश्चय
दृढ़ विश्वास

होना अनिवार्य है।

यह सूक्ष्म मंडल **अन्तर – आत्मिक "खेल"** है। इसलिए इसकी सूझ तथा ज्ञान, हमारी बुद्धि की –

पकड़ से बाहर है
समझ से बाहर है

विचार से दूर है
बोलीहीन है
अक्षरहीन है
मन की भावनाओं से ऊपर है

तथा इसकी **अन्तर – आत्मा में, अनुभव द्वारा तथा निजी आत्मिक तजुरबे** (personal spiritual experience) द्वारा ही –

विचार
परिचय
चीन्ह
बूझ
समझ या
सूझ आ सकती है।

इसलिए इसका 'वर्णन', 'ज्ञान', 'सीध', **'भेद' तथा 'टोह'** भी –

भिन्न है
विलक्षण है
अनुभवी है
चुम्बकीय है
विस्मादमयी है
आश्चर्यजनक है
मस्ती है
'रुन – झुन' है
'प्रकाश' रूप है
''प्रेम – स्पर्श'' है
'प्रिम – प्याला' है
'जीअ – दान' है
'चुप – प्रीत' है
'आत्मिक – छुह' है
'आत्मिक – चिंगारी' है
'शबद' है
'नाम' है।

यद्यपि इस अन्तर – आत्मिक **'खेल'** को, बोली द्वारा बयान नहीं किया जा सकता, समझा नहीं जा सकता, फिर भी बड़े सुन्दर – मनमोहक ढंग से, इस अनुभवी

आत्मिक 'खेल' के अनगिनत **'पक्ष'**, **'भेद'** तथा **'रंगों'** को दर्शाने के लिए, गुरबाणी में **'संकेत'**, **'टोह'**, **'सीध'** तथा **'चिन्ह'** दिये गए हैं –

हरि रस के माते मनि सदा अनंद।। (पृ. ३७७)

हरि रसु पीवै अलमसतु मतवारा।। (पृ. ३७७)

रतन कोठड़ी अंम्रित संपूरन सतिगुर के खजानै।।१।।
अचरजु किछु कहणु न जाई।। बसतु अगोचर भाई।। (पृ. ८८३)

ऐसा रसु अंम्रितु मनि चाखिआ त्रिपति रहे आघाई।। (पृ. ८८३)

गिआनि रतनि घटि चानणु होआ नानक नाम पिआरो।। (पृ. ५८४)

अंतरि परगासु घटि चानणा हरि लधा टोलै।। (पृ. ९५५)

जोति सरूपी तत अनूप।। अमल न मल न छाह नही धूप।। (पृ. ३४४)

बादल बिनु बरखा होई।। जउ ततु बिचारै कोई।। (पृ. ६५७)

अनहद झुणकारे ततु बीचारे संत गोसटि नित होवै।। (पृ. ७८३)

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।। (पृ. ४४२)

अंम्रितु नामु भुंचु मन माही।।
अचरज साद ता के बरने न जाही।। (पृ. ७४२)

देखहु अचरजु भइआ।।
जिह ठाकुर कउ सुनत अगाधि बोधि सो रिदै गुरि दइआ।। (पृ. ६१२)

किंकुरी अनूप वाजै।। जोगीआ मतवारो रे।। (पृ. ८८३)

झिमि झिमे झिमि बरसै अंम्रित धारा राम।। (पृ. ४४२)

हरि प्रेमि कसाई दिनसु राति हरि रती हरि रंगि चोले।। (पृ. ६४२)

हरि की कथा अनाहद बानी।।
हंसु हुइ हीरा लेइ पछानी।। (पृ. ४८३)

सूख सहज आनंद भवन।।
साधसंगि बैसि गुण गावहि तह रोग सोग नहीं जनम मरन।। (पृ. ८८८)

यद्यपि इन दोनों मंडलों के धर्मों की अवस्थाएं, भिन्न – भिन्न तथा एक दूसरे से उलट या विपरीत (contradictory) प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में यह एक

ही **"जीवन – रौं"** की **'रवानगी'** के –

भिन्न – भिन्न **"पड़ाव"** हैं
भिन्न – भिन्न **"दर्जे"** हैं
भिन्न – भिन्न **"किनारे"** हैं
ऊँचे नीचे **"लैवल"** (level) हैं
प्रतिछाया (projection) हैं
सहायक हैं।

जब पानी की बूंदें आकाश से वर्षा द्वारा धरती पर गिरती हैं, तब यह इकट्ठी होकर, नालियों, नदियों, नहरों द्वारा अनेक देशों, पहाड़ों व मैदानों से गुजरती हुई, अपने 'मूल – स्त्रोत' समुंद्र की ओर बहती जाती हैं। परन्तु यदि इस लम्बी जीवन – यात्रा में कोई **"रुकावट"** आ **जाए** तथा **"जीवन – रौं"** की **रवानगी** (चाल) में **'विघ्न'** पड़ जाए, तो यह पानी पोखरों, छपड़ों, तालाबों में इकट्ठा होकर, सीमित किनारों में **कैद** हो जाती है। धीरे – धीरे यह छपड़ों में **'कैद'** हुआ पानी **दूषित** हो जाता है तथा इस दूषित पानी के आस – पास का वायुमंडल (environment) हानिकारक बन जाता है।

ठीक **यही दशा 'जीव'** की है। जब हमारी आत्मा, इलाही **"जीवन – रौं", "हुकुम"** की **"रज़ा", "रवानगी"** में बहती रहती है, तब वह अपनी मन्ज़िल **ईश्वर** में जा समाती हैं। चाहे इस लम्बी व कठिन **"जीवन – यात्रा"** में अनेक उतार – चढ़ाव और कष्ट सहने पड़ते हैं।

परन्तु यदि इन जीवों की जीवन – यात्रा की **'रवानगी'** में, **अहम्ग्रस्त, सयानप, चतुराईयों** के **'विघ्न' पड़ जायें,** तो यह जीवन **स्वयं ही बनाए हुए 'अहम्' के "भंवर" में फँस कर 'कैद'** हो जाते हैं तथा त्रिगुणी मायिकी संसार में–

'जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना।।' (पृ. ४३३)

'आपणै भाणै जो चलै भाई विछुड़ि चोटा खावै।।' (पृ. ६०१)

'पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु।।' (पृ. १३३)

वाली उनकी दशा हो जाती है।

जब हमारी **"जीवन – रौं" अहम् रूपी "छप्पड़"** में कैद हो कर प्रदूषित, और मैली हो जाती है तो फिर हम स्वयं ही दुखी नहीं होते, अपितु अपने आस – पास के वातावरण को भी, **'अहम्' में से उत्पन्न दुर्गन्ध द्वारा, प्रदूषित कर देते हैं,** जिसका **बूरा असर** विश्व में तरंगों (vibrations) द्वारा **फैल** जाता है। इस प्रकार

हम दूसरों को, सुख देने की अपेक्षा, अपने **'अहम् के दीर्घ रोग'** का विष दैवीय कुदरत में **फैलाने** के अपराधी बनते है।

'ईश्वरीय रौं' की 'रवानगी' रज़ा में से निकलकर, 'अहम् ग्रस्त' जीव, आप ही **'भद्र–पुरुष', 'हउ विच सचिआरु'** बन कर, **दूसरों को तुच्छ नज़र से देखते हैं तथा 'आरोप' लगाने के लिए तत्पर रहते है।** यह सब **'अहम् ग्रस्त' मन की** ढिठाई है, जिसका परिणाम हमारे सम्मुख, हमारी मानसिक, धार्मिक तथा आत्मिक **गिरावट तथा ग्लानि** के रूप में **प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर** हो रहा है।

हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ।।
हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ।।.....
हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा।।
मोख मुकति की सार न जाणा।।
हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ।।
हउमै करि करि जंत उपाइआ।।
हउमै बूझै ता दरु सूझै।।
गिआन विहूणा कथि कथि लूझै।।

पुनः हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि।।
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि।। (पृ. ४६६)

जन्म–जन्मांतरों से बाहरमुखी मायिकी धर्म के कर्म–क्रिया का अभ्यास (practice) करते हुए, यह कर्म–कांड हमारे मन, बुद्धि अन्त–करण में इतने **धस, बस, रस गए** है कि हम इन **बाहरमुखी कर्म–क्रियाओं** को ही **'सम्पूर्ण धर्म' माने हुए हैं** और इसमें ही हम इतनी **'संतुष्ट'** और मस्त हो गए हैं कि गुरबाणी में दर्शाए इलाही उच्च–पवित्र **अनुभवी मंडल** को–

जानने
समझने
बूझने
चीन्हने
सीझने विचार करने
पहचानने
निर्णय करने
ध्यान देने
अनुभव करने

से हम **असमर्थ, अनजान तथा बेपरवाह** हो गए हैं। जिसके फलस्वरुप बाहरमुखी

'कर्म – क्रिया' वाले धर्म के **'अतिरिक्त', अन्य** किसी 'आत्मिक मंडल' के **अनुभवी उत्तम आत्मिक उपदेशों** का हमें –

ख्याल ही नहीं
लालसा ही नहीं
आवश्यकता ही नहीं
फुरसत ही नहीं
चाव ही नहीं
उमाह ही नहीं
उद्यम ही नहीं
निश्चय ही नहीं है। (या नाममात्र है)

आश्चर्य और दुख की बात तो यह है **कि बावजूद** –

निता – प्रति गुरबाणी का पाठ, गायन, कथा करते हुए, गुरबाणी में अंकित उच्च – पवित्र **आत्मिक मंडल** के संबंध में पढ़ते, पढ़ाते, सुनते – सुनाते, ज्ञान घोटते भी, यह **लापरवाही** हो रही है।

इसके **परिणामस्वरूप,** हम गुरबाणी के **आंतरिक अनुभवी** –

आत्मिक गुणों
आत्मिक हिलोर
आत्मिक उड़ान
'हरि – रंग'
'हरि रस'
'प्रेम – रस'
'प्रेम – प्याला'
'प्रेम – छुह'
'प्रेम – स्वैपना'
'रुन – झुन'
'विस्मादी मस्ती'
'आत्मिक प्रकाश'
'जीवन – रौं'
'शबद'
'नाम'

आदि तथा अन्य अनेक आत्मिक मंडल की **बख्शिशों** से **वंचित जा रहे हैं और**

हमारा जीवन, 'अहम्' से ग्रसित हो कर, **रूखा–सूखा** बन कर

'पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु।।' (पृ. १३३)

वाला हो रहा है।

इस प्रकार हम गुरबाणी में अंकित **'गुप्त' भेद वाले 'शब्दों' के सही, अन्तर–मुखी, अनुभवी, 'तत' ज्ञान वाले 'तथ्यों' से अनजान या** लापरवाह हो रहे हैं, जैसे कि–

' '

'इक गल'
'इक शबद'
'तत शबद'
'अनहद शबद'
'अनहद धुनी'
'एका बाणी'
'इक गुरू'
'माणिक मोती'
'अमृत भोजन'
'हरि जल'
'प्रेम प्याला'
'अकथ कथा'
'रुनझुन'
'सहज'
'हुकुम'
'नाम'
'तत्त'

आदि, शब्दों की कथा, अपनी अल्प बुद्धि के द्वारा, अनजाने ही–

नाममात्र
गलत
उलट
हास्यप्रद
टाल–मटोल

ही कर देते हैं तथा गुरबाणी में दर्शाए हीरे, **मोती, माणिक, अमूल्य रत्नों के ऊपर से ही गुजर जाते हैं–**

मारगि मोती बीथरे अंधा निकसिओ आइ।।
जोति बिना जगदीस की जगतु उलंघे जाइ।। (पृ. १३७०)

हम त्रिगुणी **'मायिकी मंडल'** में रहते हैं तथा जब तक **'साध–संगत'** तथा **गुर प्रसाद द्वारा,** इस मंडल से **ऊपर उठ** कर **'आत्मिक मंडल'** में नहीं पहुँचते, हमें इस मायिकी मंडल के नियमों अनुसार बाहरमुखी धर्म के **कर्म–क्रिया** 'पालन करने' अनिवार्य हैं।

परन्तु महत्त्वपूर्ण नुक्ते **वाली बात** यह है कि सारे क्रिया–कर्म–

यत्न हैं	–	'परिणाम' नहीं
साधन हैं	–	'पूर्णता' नहीं
सीढ़ीयां हैं	–	'शिखर' नहीं
यात्रा हैं	–	'मंज़िल' नहीं
ज्ञान हैं	–	'प्रकाश' नहीं।

इन दोनों मंडलों में धर्म प्रचार के साधन आशय तथा परिणाम में भिन्नता का निर्णय इस प्रकार हो सकता है–

बाहरमुखी धर्म का प्रचार	**अन्तर–आत्मिक प्रचार**
दिमागी विषय है।	अनुभवी खेल है।
अक्षरों पर आश्रित है।	अक्षरहीन है।
बोली वाला है।	'अबोल' है।
सीखा–सिखाया जाता है।	अन्तर–आत्मिक 'छुह' है।
बाहर से थोपा जाता है।	अन्तर–आत्मा में उत्पन्न होता है।
अंधकार में टोह है।	आत्मप्रकाश का उजाला है।
भ्रम–भुलाव है।	**जाहरा–जहूर है।**
समझा–समझाया जाता है।	**'अनुभवी' सूझ** है।
अनेक वेश है।	**'एको–एक' वेश** है।
अनेक नाम हैं।	**अ–नाम** है।
अनेक चिंतन है।	**एक चिंतन** है।

दिमागी भावनाएं हैं।	आत्मिक **विस्माद** है।
मतभेद है।	**'एकता'** है।
अनेक रंग है।	**एक ही रंग** है।
वैर – विरोध है।	**प्यार** है।
अहम् का 'बोलबाला' है।	**नम्रता** है।
सयानप है।	भोला – पन है।
साधना पर टेक है।	**गुर – प्रसाद** है।
बाहर ढूंढना है।	**'घर महि सभ किछु'** है।
शारीरिक कर्म – क्रिया है।	**'अन्तर' बिलौना** है।
उतार चढ़ाव है।	**'सहज'** है।
रस हीन तथा फोकट क्रिया है।	**महांरस** है।
मुर्दे साधन है।	**'जीवन रौं'** है।
दुख – सुख है।	सदा सुख है।
आवा – गमन है।	**'अमर'** है।
पाप – पुन्य है।	**सब भला** ही है।
हउ विच सचिआरु है।	**पूर्णतया 'सच'** है।
बाहरी स्नान है।	**हरि जल में** अन्तर – आत्मिक स्नान है।
तअसुब है।	रवादारी है।
वियोग है।	अंतर – आत्मा में सदैवीय मिलाप है।
घृणापूर्ण व्यवहार है।	आत्मिक **आकर्षण** है।
अनेक मंत्र है।	**एक ही महामंत्र** है। (wordless word)
अनेक बाणियां हैं।	**'एका बाणी'** है।
अनेक गुरू हैं।	**'इक गुरू'** है।
अनेक शबद हैं।	**'एक ही शबद'** है।

अब तक हमारे बाहर – मुखी मायिकी मंडल तथा इसमें प्रचलित धर्मों के प्रचार के विषय में, विवरण – सहित विस्तारपूर्वक विचार की गई है। इसके आगे, धर्म के

आध्यात्मिक पक्ष पर विचार शुरू करने से पहले निम्नलिखित **महत्वपूर्ण नुकतों को –**

दोहराने

समझने

दृढ़ करने

की आवश्यकता है कि विश्व में दो **भिन्न – भिन्न मंडल** है।

1. **अन्तर – आत्मिक अनुभवी मंडल** तथा 'त्रिगुणी बाहरमुखी' मायिकी मंडल।

2. इन मंडलों में भिन्न – भिन्न धर्म प्रचलित हैं।

3. इन धर्मों के प्रचार भी भिन्न – भिन्न हैं।

4. मायिकी दुनिया नाशवान है तथा इसका अपने आप में कोई अस्तित्व नहीं। केवल हमारे **ख्यालों** का **"भ्रम – भुलाव"** है। इसमें **'अहम्'** का राज्य है। इसलिए इसमें हम **'कर्म – बद्ध'** है।

'जो मै कीआ सो मै पाइआ' के अनुसार Karmic law के अधीन हैं।

5. आत्मिक मंडल में केवल –

इलाही 'हुकुम' है।

'प्रिम – खेल' है।

'आत्मिक प्रकाश' है।

'सदा आनंद' है।

'महां – रस' है।

'रंग – चलूला' है।

'रुन – झुन' है।

'विस्मादी मस्ती' है।

बख्शिश है।

कृपा है।

गुरप्रसाद है।

'सहज' है।
'शबद' है।
'नाम' है।
'सच' है।

अकालपुरुष ने अपनी मौज में अपने **'कवाउ'** द्वारा यह मायिकी संसार बनाया तथा इसमें अहम् का अंश डाल कर, 'मैं–मेरी' के भ्रम में जीवों के **मनोरंजन के लिए** – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पांच – तत्त्व उत्पन्न किए इस मायिकी दुनिया में मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया तथा इसे **अपने स्वरुप** में **सजा कर**, **अन्य योनियों से** विलक्षण निम्नलिखित **'बख्शिशें' प्रदान कीं** –

1. तीक्ष्ण बुद्धि (unlimited intelligence)
2. निर्णय शक्ति (discriminating power)
3. सूक्ष्म भावना (sensitive feelings)
4. विचारों व कर्मों की आज़ादी (freedom of thought and actions)
5. अनुभवी ज्ञान की लालसा।
6. इलाही मंडल का आकर्षण।

अपने **ख्यालों की आज़ादी व तीक्ष्ण बुद्धि** का **गलत प्रयोग** करके मनुष्य ने अपने आप को **'कर्म–बद्ध'** कर लिया तथा **इलाही 'हुकुम'** से विमुख हो गया और अपने **'कर्त्ता'** को ही भूल गया।

दाति पिआरी विसरिआ दातारा।।
जाणै नाही मरणु विचारा।। (पृ. ६७६)

देंदे थावहु दिता चंगा मनमुखि ऐसा जाणीऐ।। (पृ. १३८)

कीते कउ मेरै संमानै करणहारु त्रिणु जानै।। (पृ. ६१६)

भागहीण मनमुखि नही लीआ त्रिण ओलै लाखु छपाइआ।। (पृ. ८८०)

इस प्रकार मनुष्य, अपने ही **कर्मों के जाल में फंस कर,** दुख–सुख भोग रहा है। कृपालु और सदबखशिंद भगवान ने जीव को मात्र उसकी अपनी **चतुराईयों के सहारे नहीं छोड़ा,** अपितु अपने जीवों पर तरस कर के, आदि से ही, गुरू, पैगम्बर, अवतार, महा–पुरुष, संत, साधु, गुरमुख जन इस संसार में भेजे, ताकि वह हमारे **कमजोर तथा भटके हुए मन को** उपदेश व **'जीवन–सीध'** देकर

सहायता करें और हम बरव्शी हुई तीक्ष्ण बुद्धि तथा 'आत्म निर्णय' शक्ति का उचित **प्रयोग करके अपने कर्त्ता की ओर पुनः लौटने का उद्यम तथा प्रयास कर सकें।**

यह, **इलाही 'माता' 'पिता' होने के नाते,** ईश्वर का अपने 'अंश' जीवों के लिए, असीम गहरा प्यार, मेहर, बरिव्शश है। इसलिए बाणी में गुरू साहिब ने **परमात्मा** को इन सुन्दर शब्दों द्वारा सम्बोधित किया है–

सद बरिव्शंद
सद मेहरवान
अति–प्रीतम्म
प्रेम–पुरुष
अवगुण को न चितारे
मिठ बोलड़ा।

इस इलाही प्रेम, बरिव्शश, गुरप्रसाद, गुप्त 'हुकुम' के रूप में, सारी सृष्टि–

1. इलाही 'कवाउ' के उछाल में से उत्पन्न हुई है।
2. इलाही **हुकुम की 'रवानगी',** सृष्टि के कण–कण में ओत–प्रोत प्रवृत्त है।
3. इसी दैवीय प्रेम की **'जीवन–रो', 'नाम'** द्वारा इसकी सम्भाल हो रही है।
4. इन जीवों के मार्गदर्शन के लिए, इनकी **अन्तर आत्मा** में इनके **'साथ'** ही (अन्तर्गत) 'हुकुम' लिरव दिया है।
5. अपने अंश जीवों के पालन–पोषण के लिए **अनगिनत प्राकृतिक बरिव्शशों** की रचना कर दी।

उपरोक्त विचारों से सिद्ध होता है कि ईश्वर का अपने 'अंश', जीवों के प्रति, **'माँ'– 'बाप' वाला नाता होने** के कारण, अपने बच्चों के लिए **अत्यंत गहरा 'माँ' प्यार है।** इसी **इलाही प्यार** के द्वारा ही जीवों का–

'प्रतिपालन'
सर्व–सम्भाल

‘लाड – लडाना’

रवेल रिवलाना

प्रफुल्लता

भलाई

रवुशहाली

आत्मिक उन्नति

आत्मिक बरिव्शश

गुर – प्रसाद

‘नाम – दान’

कल्याण

मुक्ति

सहज ही हो रही है। परन्तु जब हम अपने **इलाही माता – पिता को भूल कर, ‘अहम्’ के अधीन** होकर, **‘मनमर्ज़ी’ करते हैं तब इलाही ‘माँ’** की **प्रेममयी गोद में से निकल जाते हैं** तथा इस दुनिया में **‘कर्म – बद्ध’** होकर दुरव – सुरव भोगते हैं।

फिर भी, ईश्वर अपने सद – बरिव्शंद, सद – मेहरबान के बिरद का पालन करता हुआ, हमारी विमुरवता, भूल तथा अवगुणों को अनदेरवा कर देता है और अपने प्यारे ‘अंश’ जीव को –

बार – बार क्षमा करता

चरण शरण की ओर प्रेरित करता

प्रीत – डोरी से रवींचता

जीअ – दान देता

हुआ, अपनी स्नेहमयी गोद का रस प्रदान करता है।

ईश्वर, हम भूले – भटके, विमुरव जीवों के कल्याण हित, अपनी बरिव्शश और गुरप्रसाद का प्रकटाव आदि से ही करता आया है जैसे कि –

1. गुरू, अवतारों, महापुरुषों का संसार में आना।
2. उनके द्वारा आत्मिक प्रचार का विकास।

3. उनकी कल्याण रूप 'बाणियों' के उपदेश।
4. इन बाणियों का पाठ, कीरतन, कथा आदि।
5. अनेक धर्म स्थान।
6. अन्य अनेक कर्म-क्रिया तथा प्रचार के साधन।

यह सब अकालपुरुष की कृपा, बख्शिश, गुरप्रसाद, प्रीत, प्यार, प्रेम के प्रतीक है।

हमारी शिक्षण प्रणाली में अनेक श्रेणियां हैं Primary Middle, High, Graduate तथा Post-graduate की कक्षाऐं। इनके उपरांत कुछ गिने-चुने या विरले विद्यार्थी, जिनकी अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि तथा पिछले जन्म के संस्कारों की रुचि होती है, वह specialisation course में प्रविष्ट होते हैं। ऐसे कोर्स में पहाड़े याद करने, या फारमूले रटने समाप्त हो जाते हैं तथा विद्यार्थी को **किसी एक विषय के आन्तरिक खोज** (research) **स्वयं करनी पड़ती** है तथा उस विषय के आन्तरिक ज्ञान पर थीसिस (thesis) लिखनी पड़ती है। ठीक इसी प्रकार हम, **मायिकी धार्मिक प्रणाली** के कई पड़ावों में से गुजरते हैं। बहुत से जिज्ञासु तो पाठ, पूजा या बाहरी मायिकी धर्म के **कर्म-क्रिया तथा रिद्धियों-सिद्धियों** में ही अटक कर **'संतुष्ट'** हो जाते हैं।

परन्तु इन में से, कुछ **विरले सच्चे जिज्ञासु जिनकें पिछले जन्मों के धार्मिक संस्कार होते हैं,** बाहरी **क्रिया-कर्म** और **रिद्धियों-सिद्धियों से उनकी निर्मल आत्मा की संतुष्टि नहीं होती तथा** उनकी **अन्तर-आत्मा में** किसी उत्तम **आत्मिक मंज़िल के आकर्षण की धुक-धुकी बनी रहती है।** ज्यों-ज्यों वह उत्तम-पावन संगत करते हैं, उनकी **आत्मिक 'भूख'** बढ़ती हुई **अति तीक्ष्ण विह्वलता** तक पहुँच जाती है। **विह्वलता वाली खोज के परिणाम स्वरूप** उन्हें सतिगुरू की कृपा दृष्टि द्वारा, महा-पुरुषों की संगत प्राप्त होती है-

फिरत फिरत भेटे जन साधू पूरै गुरि समझाइआ।। (पृ.६७६)

कोई आवै संतो हरि का जनु संतो
मेरा प्रीतम जनु संतो मोहि मारगु दिखलावै।। (पृ. १२०१)

सेई पिआरे मेल जिनहां मितिआ तेरा नाम चित आवै।। (अरदास)

संत की धूरि मिटे अघ कोट।।
संत प्रसादि जनम मरण ते छोट।।१।।
संत का दरसु पूरन इसनानु।।
संत क्रिया ते जपीऐ नामु।। (पृ. १८९)

जपि मन राम नाम परगास।।
हरि के संत मिलि प्रीति लगानी विचे गिरह उदास।। (पृ. १२९५)

जैसे पीछे बताया गया है कि त्रिगुणी मायिकी मंडल में हमारे धर्म तथा इनके प्रचार के साधन, **अहम् की सीमा में, दिमागी ज्ञान पर आधारित हैं।** इस अवस्था को स्कूल, कालिज की विद्या – प्रणाली द्वारा संकेतित किया जा सकता है। पिछले जन्मों की कमाई वाली विरली, उत्तम व **निर्मल रूहों** की अवस्था विलक्षण है और इनके लिए 'धर्म' का 'ज्ञान' तथा धर्मप्रचार भी **भिन्न** है।

जिस प्रकार specialisation course में बाहरी शिक्षा **समाप्त** हो जाती है तथा उसकी थीसिस (thesis) लिखने के लिए अपने अन्दर की खोज (research) द्वारा, किसी विषय के विशेष पहलू को **प्रकट करना होता है।** इसी प्रकार जब यह निर्मल रूहें बाहरी दिमागी ज्ञान से संतुष्ट नहीं होती, तो उनकी अन्तर – आत्मा में कोई **उत्तम – पावन, इलाही 'भूख', 'प्यास' व 'कांखी'** लग जाती है और वह अपनी **अन्तर – आत्मा में सिमरन द्वारा 'खोज'** करते हैं। इस **विलक्षण अन्तर – आत्मिक खोज में,** बख्शें हुए गुरमुख जन, महांपुरुष ही मार्गदर्शन तथा सहायता कर सकते है। यह अन्तर्मुखी गहन खोज 'आत्मिक – तत – बेते' के **बिना सम्भव नहीं।** यहाँ त्रिगुणी दिमागी ज्ञानियों की **विद्यक डिग्रियों** को कोई **पहुँच नहीं है।** जैसे की गुरबाणी में फुरमान है –

जिनि आतम ततु न चीन्हिआ।।
सभ फोकट धरम अबीनिआ।। (पृ. १३५१)

सभ धरम फोकट जाण सभ करम निहफल माण,
बिन एक नाम आधार सभ करम भरम वीचार।। (अकाल उसतति)

हउ हउ करते करम रत ता को भारु अफार।।
प्रीति नही जउ नामद सिउ तउ एऊ करम बिकार।।

(गउड़ी बावन अखरी, म. ५ – २५२)

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।। (पृ. ४४२)

सभ किछु घर महि बाहरि नाही।।
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही।। (पृ. १०२)

अनहद बाणी पूंजी।। संतन हथि राखी कूंजी।। (पृ. ८९२)

संता संगति मिलि रहै ता सचि लगै पिआरु।। (पृ. ७५६)

करम धरम इहु ततु गिआनु।।
साधसंगि जपीऐ हरि नामु।। (पृ. ८६६)

हमारा ज्ञान, हमारी बुद्धि के विकास तक **सीमित** है। मनुष्य की ग्रहण शक्ति असीम है, परन्तु **मज़े की बात** यह है कि हमारी यह बुद्धि **अपने–आप में शक्तिहीन है।** इसे शक्ति **इलाही बुद्धि** (Divine intelligence) के **'अक्स'** (reflection) **से प्राप्त होती है।** परन्तु हमारी सारी शक्ति **पदार्थिक खोज** (material research) की ओर लग रही है तथा हम अपने **'केन्द्र'** से बिलकुल **अनजान या बेपरवाह होते जा रहे हैं।** जिस कारण हम पावन–पवित्र सुखदायी, असली इलाही **'आत्मिक ज्ञान' से वंचित होते जा रहे हैं।**

अंग्रेजी में किसी ने ठीक ही लिखा है–

Our intellectual knowledge can take us, at best, to the outer court-yard of Divinity and no further. Only intutional Divine knowledge can introduce and usher us into Divine Realm. Divine intelligence is the all-in-all, complete, perfect, sublime light and knowledge, from which our little brains derive light and knowledge. Divine intelligence, being the Mother of all-intelligence, is the only knowledge worth learning and acquiring and all other knowledge

will follow by reflection.

इसका हिन्दी में अनुवाद इस प्रकार है–

'**हमारा दिमागी** ज्ञान, ज्यादा से ज्यादा हमें आत्मिक दायरे के **बाहरी आंगन तक** पहुँचा सकता है, उससे आगे नहीं। केवल **अनुभव द्वारा ही आत्मिक प्रकाश की झलकें अनुभव की जा सकती है। 'आत्मिक ज्ञान'** ही **पूर्ण 'तत्–ज्ञान'** है, जिसके **अक्स तथा प्रकाश से** ही हमारी बुद्धि को शक्ति मिलती है। यह **'तत्–ज्ञान'** सम्पूर्ण ज्ञान की **'जननी'** है। इसी **'तत्–ज्ञान'** की प्राप्ति के लिए **खोज** करने की आवश्यकता है तथा इसके द्वारा ही अन्य पदार्थिक **ज्ञान प्रकाशित** होते हैं।''

यह बाहरमुखी ज्ञान हमारे 'अहम्' के चारों ओर घूमता है। हमारे विचारों में **अहम् की रंगत** होने के कारण **'द्वैत का टकराव'** होता रहता है तथा हमारा जीवन रूखा–सूखा, ईर्ष्या, द्वेष, वैर–विरोध, काम, क्रोध, अहंकार आदि **तुच्छ अवगुणों** (low passions) **की दलदल** में गलतान है।

इसके विपरीत, यदि हम 'अन्तर–मुखी' आत्मिक ज्ञान को विकसित करें तो हमारी बुद्धि पर **आत्मिक रंग चढ़ेगा** और हमारे हृदय में दैवीय गुण प्रवेश होंगे जिससे हम शांत व सुखी जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

बाहरी–ज्ञान–

हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा **बाहर से असर ग्रहण करते है,** या देख–सुनकर, पढ़–सोच कर **बाहरी असर ग्रहण करते हैं।** यह बाहरी ज्ञान हमें केवल मायिकी दुनिया, **'त्रिगुणी' दायरे तक ही सीमित रखता है।** त्रिगुणों में ही हम शब्दिक तथा वैज्ञानिक विद्या के असीम विकास व खोज में, लगे हुए हैं और **'अन्तर–मुखी' आत्मिक विद्या से बिल्कुल कोरे और बेपरवाह हो रहे है।** इसी कारण हमारा जीवन दुखदायी तथा अशांत हो रहा है। इस समय हमें ऐसी **आत्मिक संगति** की अत्यंत **आवश्यकता** है, जहाँ **'अन्तर–मुखी आत्मिक ज्ञान'** प्रदान किया जाए। **यह अन्तर–मुखी आत्मिक ज्ञान प्रदान करने वाले अध्यापक, केवल आत्मिक जीवन वाले** गुरमुख, संत, महां–पुरुष ही हो सकते हैं। परन्तु

'आत्मिक – तत – ज्ञान के बेते' विरले ही हैं। ऐसे गुरुद्वारे, धर्मशालाओं को गुरबाणी अनुसार, **'साध – संगत'** या **'सत् – संगत'** कहा गया है, जहाँ सही अर्थों में **'आत्मिक जीवन' ढाला जाता है और 'आत्मिक ज्ञान' प्रदान होता** है। इस समय **'आत्मिक – ज्ञान' के जीवन वाले संत महां – पुरुषों का अकाल** है। जो **'दिमागी ज्ञान'** हमने बाहर से पढ़, सुन कर, समझ कर प्राप्त किया है, वह **'नाममात्र', 'अपूर्ण' तथा 'उधार लिया हुआ'** है। **'वास्तविक ज्ञान'** वह है, जो **आत्मा में से 'प्रस्फुटित'** हो, उसे **'तत् – ज्ञान'** कहते हैं।

'अन्तर – मुखी अनुभवी तत् ज्ञान' से कोरे प्रचारक, कहीं से दो चार गुरबाणी की पंक्तियाँ या साखियाँ याद करके, अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा, उक्तियों – युक्तियों द्वारा, जनता को भ्रम में डाल रहे हैं। परिणामस्वरुप भोली जनता तथा जिज्ञासु, उलझनों में पड़ कर, गुरमति के उचित तथा **पवित्र – पावन मार्ग से दूर होते चले** जा रहे है। यह **'नाममात्र', 'अपूर्ण', 'उधार लिया' या 'जूठा' दिमागी ज्ञान, 'वक्ता' तथा 'श्रोता', दोनों को भ्रम** में डाले रखता है। गुरबाणी धुर से, 'अनुभवी देश' के **'आत्मिक – तत् – ज्ञान'** की **प्रकाश रूपी 'बोली'** है तथा बुद्धि की **समझ** और **पकड़** से दूर है। यह **'अनुभवी – आत्मिक – ज्ञान'** केवल **'साध संगत'** में विचरण करते हुए, अन्तर – मुख होकर, **अटूट सिमरन अभ्यास द्वारा, 'आत्मिक स्त्रोत' से ही स्फुट्टित हो सकता है।** जब तक अन्तर – मुखी **आत्मिक खोज द्वारा,** अनुभवी प्रकाश नहीं होता, हम गुरबाणी के वास्तविक पवित्र – पावन **पूर्ण 'तत् – ज्ञान' का पूरा लाभ नहीं ले सकते।**

पुरातन समय में बख्शे हुए गुरमुख जन तथा महां – पुरुषों के धर्म – स्थान, धर्मशाला सही अर्थों में **'गुरमति – कालेज'** होते थे। क्योंकि इनमें **जिज्ञासुओं का जीवन,** महां – पुरुषों के मार्गदर्शन में, गुरबाणी अनुसार **ढाला जाता था।** वहां से, धार्मिक ज्ञानी या 'ग्रेजुएट' **की अपेक्षा 'भाई साहब', संत, महां – पुरुष** बनकर निकलते थे तथा आगे वह अपने ऊँचे व सच्चे **'आत्मिक – जीवन'** की **'छुह' द्वारा** अनेक जिज्ञासुओं का **जीवन परिवर्तित करके, 'जीवन – तत् – ज्ञान' प्रदान करते थे।** जब तक हमारी धार्मिक संस्थाओं एवं कालिजों के प्रबंधक तथा अध्यापक, **दिमागी ज्ञान की डिग्रियों की अपेक्षा, 'आत्मिक – तत् – ज्ञान' के प्रकाश में जीवन व्यतीत करने वाले** गुरमुख जन, **महां – पुरुष नहीं होंगे,**

गुरबाणी और **गुरमति की शिक्षा तथा खोज** 'नाममात्र', 'अपूर्ण' तथा 'फोकट' रहेगी। गुरबाणी में इस **अन्तर-मुखी खोज** को **'विचारना', 'बूझना', 'जानना', 'पहचानना', 'सीझना', 'खोजना'** कहा गया है जो कि **'अनुभवी' खेल है न कि दिमागी क्रिया।**

गुरबाणी के **'तत्-अनुभवी-ज्ञान'** से **अनभिज्ञ होने के कारण,** जिस **'आत्मिक अज्ञानता'** के **अंधकार** में से हमें गुरू साहिब ने **मुक्त करवाया था,** उसी **अज्ञानता के 'अंधकार'** में हम **पुनः फँस गए हैं।**

गुरबाणी धुर आत्मिक मंडल से आई है तथा इसमें **आत्मिक 'प्रकाशमयी' इलाही 'तत्-ज्ञान' परिपूर्ण** है। जिस प्रकार संसार में हमें सूर्य से धूप रूपी **'प्रकाश'** मिल रहा है, उसी प्रकार **'आत्मिक प्रकाश'** रूपी 'तत्-ज्ञान' सम्पूर्ण विश्व के लिए **'आत्मिक प्रकाश'** रूपी **'ज्ञान'** है, जो गुरू-साहिब की अपार कृपा द्वारा **'गुरसिखों को विरासत' में मिला है तथा-**

खावहि खरचहि रलि मिलि भाई।।
तोटि न आवै वधदो जाई।। (पृ. १८६)

का हुकुम हुआ है। यह ऐकमात्र 'सरब रोग का अउखदु नामु' है, जो हमें गुरू साहिब ने **संसार के सभी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक रोगों को दूर करने के लिए 'अमानत' के रूप में दिया था।** इसका प्रयोग न तो हमने **स्वयं किया** है **तथा न ही सारे जगत को करवाया है।** इसके **विपरीत,** इस **महान** इलाही **'बख्शिश' को अपने मायिकी स्वार्थ** के लिए **प्रयोग करके,** उल्टा **'पाप'** कमा रहे हैं। इस कारण इस **दीर्घ तथा महान भूल** के **दण्डस्वरूप** हमारी वर्तमान **हास्यप्रद** और **दुखदायी अधोगति हो रही है।** यह विषय, आज सिक्ख पंथ के समस्त ज्ञानियों, विद्वानों, धार्मिक लीडरों के विशेष ध्यान योग्य तथा दीर्घ विचार योग्य है।

जिस प्रकार **'प्रेम'**, पढ़ाया या सिखाया नहीं जा सकता, केवल **'छुह'** द्वारा ही **प्रस्फुटित होता है** (love is caught not taught)। इसी प्रकार **'आत्मिक-तत्-ज्ञान' का 'आत्मिक खमीर' भी, 'तत् ज्ञान के बेते',** गुरमुख जनों की अनुभवी 'छुह' द्वारा ही लग सकता है तथा आत्मिक **'झलकों'**

का अनुभव हो सकता है। इसके विषय में गुरबाणी में इस प्रकार दर्शाया गया हैं–

महा पवित्र साध का संगु।।
जिसु भेटत लागै प्रभ रंगु।। (पृ ३९२–९३)

करम धरम ततु गिआनु संता संगु होइ।। (पृ. ५२१)

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी।।
(पृ. २०४)

संतन पहि आपि उधारन आइओ।।१।।रहाउ।।
दरसन भेटत होत पुनीता हरि हरि मंत्रु द्रिड़ाओ।।१।।
काटे रोग भए मन निरमल हरि हरि अउखधु खाइओ।।२।।
असथित भए बसे सुख थाना बहुरि न कतहू धाइओ।।३।।
संत प्रसादि तरे कुल लोगा नानक लिपत न माइओ।।४।। (पृ. १२९९)

साध कै संगि नही कछु घाल।।
दरसनु भेटत होत निहाल।। (पृ. २७२)

करम धरम इहु ततु गिआनु।।
साधसंगि जपीऐ हरि नामु।। (पृ. ८३३)